ओ३म्
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 सितम्बर 2021
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४२, वर्ष-१४
भाद्रपद विक्रमी २०७८ (सितम्बर 2021)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ॥ –यजुः० ३२। १

व्याख्यान– जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, [(तदेवाग्नि)] उसी का नाम 'अग्नि' है, "ब्रह्म ह्यग्निः" शतपथे। सर्वोत्तम, ज्ञानस्वरूप और जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि 'अग्नि' शब्द के अर्थ है। "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगकर्त्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्म" इत्यादि शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं। (तदादित्यः) जिसका कभी नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम 'आदित्य' है। (तद्वायुः) सब जगत् का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम 'वायु' है। पूर्वोक्त प्रमाण से (तदु चन्द्रमाः) जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देनेवाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से 'चन्द्रमा' परमात्मा को जानना। (तदेव शुक्रम्) वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है। (तद् ब्रह्म) सो अनन्त, चेतन सब से बड़ा है, और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ानेवाला है। (ता आपः) उसी को सर्वत्र, चेतन, सर्वत्र व्याप्त होने से 'आपः' नामक जानना। (सः प्रजापतिः) सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है, अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं ॥

सम्पादकीय

कौन-किस दिशा में ..... ?

लगभग 2 अरब वर्षों की सृष्टि में करोंड़ों वर्षो तक विश्व को धर्मारूढ़ रखते हुए प्राणीमात्र के दुखनाश के संकल्प के साथ जीवन जीने वाले हमारे पूर्वजों ने जब अपने ही असंगठन, अहंकार, अज्ञान के वश होकर सहस्र वर्ष तक पराधीनता की पीड़ा सही तक भी हमारे इस देशवासियों ने इतिहास से कुछ नहीं सीखा। सहस्रों बलिदानियों के पुरुषार्थ से प्राप्त स्वाधीनता को भी सुरक्षित रखने का उपक्रम नहीं कर पाये क्योंकि यथार्थ में जीने का जो तप, त्याग एवं पुरुषार्थ चाहिए था वह नहीं किया, न ही करना चाहते हैं। प्रथम अपने परिजनों का साथ-सहयोग लेकर बढ़ते, संघर्ष करते हैं और जब पद, प्रतिष्ठा एवं सत्ता प्राप्त कर लेते हैं तब दिशा ही बदल जाती है। परिणामस्वरूप जनता दिग्भ्रमित एवं संशय के सागर में पड़कर गोते खाती रहती है, अथवा भाग्य भरोसे बैठकर- **''जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।''** की समझ लेकर कल्पनामय सपनों में रम जाती है। विचारिए! कि खण्डित स्वतन्त्रता के पचहत्तरवें वर्ष में देश, देश की सरकार और इस सरकार का वैचारिक अधिष्ठान संघ तथा विपक्ष में स्थित राजनैतिक दल एवं सत्ता से सुख-सुविधाओं की आशा पाले हुए लोग **''कौन किस दिशा में हैं ...?''** सम्प्रति हमारे देश के स्वतन्त्रता पर्व के दिन ही हमारे निकटवर्ती, कभी हमारे देश का अभिन्न भाग रहे अफगानिस्तान में जो अवांछित घटनाक्रम घटा वह सभी जानते ही हैं, साथ ही यह भी भली-भांति जानते हैं कि- जो अराजक आतंकी तालीबानी अफगानिस्तान में सत्तारूढ़ हुए, उनको हमारे देश के कट्टर विरोधी पाकिस्तान एवं चीन जैसे देशों का कितना प्रबल साथ समर्थन मिल रहा है और इसके क्या परिणाम सामने आ सकते हैं? किन्तु इस बाहरी घटनाक्रम के साथ-साथ हमारे देश के भीतर भी परिवर्तन एक नए आकार को ग्रहण करते हुए बड़ी तेजी से देश के नागरिकों के मन-मस्तिक को, उद्वेलित-अशान्त कर रहा हैं। वह परिवर्तन क्या है? इसको गम्भीरता से विचारने की आवश्यकता है-

''राष्टीय स्वयं सेवक संघ'' जिसको प्राय: देशवासी संघ के नाम से जानने लगे हैं, की स्थापना 1925 ई. में

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... **डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार** जी ने जब की थी, तब जो उद्देश्य था, जो दिशा थी, जो लक्ष्य था, वह क्या था? यह जानने के लिए संघ के जन्मकाल के लेटर पैड पर छपी यह पंक्ति स्मरण करने योग्य है- **''दया तिचेनांव-भूतांचे पालन आणि निर्दलन कंटकांचे''** इस मराठी सन्त तुकाराम जी के अभंग का अर्थ आर्यभाषा में यह है- **''दया का अर्थ है-प्राणियों का पालन और दुष्टों का दलन''** और श्रीकृष्ण जी के गीता उपदेश में भी यही वैदिक सिद्धान्त कुछ इस प्रकार है- **''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्''** अर्थात् सीधा और स्पष्ट तात्पर्य यह था कि- **''प्राणिमात्र के पालन अर्थात् रक्षा और दुष्टों का नाश''** संघ का उद्देश्य था, दिशा थी, लक्ष्य था और यह सौ प्रतिशत ठीक था। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि पूर्ण सकारात्मक भाव (पाजेटिव थिंकिंग) से भी इस वाक्य को ग्रहण करें तो क्या संघ यह कर पाया है? इस पूरे वाक्य का पहला भाग ही ले लीजिए- **''प्राणिमात्र का पालन''** तो उत्तर है- **''नहीं।''** प्राणिमात्र की तो बात क्या पिछले सात वर्षों से सत्ता के सिंहासन पर बैठे आजीवन प्रचारक (व्रती) सत्ताधीशों के होते हुए भी उ.प्र. के माननीय उच्चन्यायालय को कहना पड़ा है कि- **''गाय को भी जीवन जीने का मौलिक अधिकार है और केन्द्र सरकार इसके लिए कानून बनाए!''** माननीय न्यायालय ने भी मात्र गाय के लिए कहा है, शेष गोवंश तथा अन्य निरीह प्राणियों पर किए जाने वाले अत्याचार, बर्बर क्रूरतापूर्ण हिंसा पर तो सोचा-विचार भी नहीं गया, जबकि संघ 1925 में यह सोचता ही नहीं था, अपितु **''लेटर पैड''** पर छापकर स्पष्ट संदेश भी देता था, परन्तु आज निष्फल है। संघ को आत्मचिन्तन करना ही चाहिए! अब विचार करते हैं- दूसरे वाक्यांश पर, **''दुष्टों का दलन''** 1925 में स्थापना के काल के लिए हम उसी पुस्तक को उद्धृत करते हैं। (जिससे हमने उपरोक्त मराठी अभंग लिखा है। पुस्तक का नाम है- **''केशवः संघ निर्माता''** लेखक हैं **मा.चं.प. भिशीकर** (मल मराठी) हिन्दी अनुवाद किया है-

श्रीमान मोरेश्वर तपस्वी जी ने। संघ के अधिकृत प्रकाशन 'सुरूचि प्रकाशन' झण्डेवालां, नई दिल्ली से पुस्तक प्रकाशित है।)

मुसलमानों का अनुनय-विनय करने से वह समाज प्रसन्न होगा और ''राष्ट्रीय'' बन जाएगा यह धारणा उन्हें मानव प्रकृति के साथ असंगत लगती थी,'' अर्थात् संघ संस्थापक जिस दुष्ट दलन की घोषण कर रहे थे, वह वही मजहबी उन्मादी थे, एक ओर से मुसलमान और दूसरी ओर थे- उस समय के क्रूर अत्याचारी शासक अंग्रेज। किन्तु 1925 से अपने शताब्दी महोत्सव के निकट पहुंच चुका संघ लगता है अब थककर आत्म समर्पण करने को उद्यत है, जैसा कि- हम सभी देशवासी पिछले दो वर्षों से देख-सुन रहे हैं। ''मुसलमानों के बिना इस देश की कल्पना नहीं की जा सकती। जो मुसलमानों का विरोध करता है, वह हिन्दू नहीं हो सकता। चाहे किसी का मत-पन्थ, मजहब भिन्न हो इससे फर्क नहीं पड़ता, वह हिन्दुस्तान में रहता है, तो वह हिन्दू है।'' यह उपरोक्त सभी वाक्यांश माननीय सर संघ चालक मोहन राव भागवत जी के हैं, जो कि- एक चालकानुवर्तित्व विशिष्ठ संघ के वर्त्तमान नेता हैं। अर्थात् इन्हीं एक के आज्ञानुसार ही संघ चलता है। इस शतायु-निकटवर्ती संघ की वह प्राणि रक्षा और दुष्ट दलन का लक्ष्य तो छूट ही गया। अब तो अपने कार्यकर्त्ताओं की रक्षा भी नहीं कर पाता। इधर संघ गांधी जी की भांति ''अल्लाह ईश्वर तेरे नाम की तर्ज पर बढ़ रहा है, और उधर संघ प्रदत्त उद्देश्य से पढ़े हुए संघी अर्थात् संघ कार्यकर्ता ''संयुक्त किसान मोर्चा'' के मंच से लगे 'अल्लाह हो अकबर' के नारे के विरोध में धरती-अम्बर चीर रहे हैं। अर्थात् संघ की दिशा बदल गयी है, किन्तु संघी पहले वाली दिशा में तत्पर हैं संघ गांधी जी को पूजने में व्यस्त है और संघी गोडसे जी का गुणगान कर रहे हैं। संघ के मूर्धन्य विचारक कहते हैं- ''संघ आगे बढ़ रहा है।'' संघ प्रौढ़ हो गया है- ''संघ विशाल हो गया है।'' आदि-आदि। और संघी बहुत पीछे डॉ. हेडगेवार जी के ही समय में रह गए हैं। रही बात देश की निरीह जनता की वह तब गांधी जी और कांग्रेस के मोह में थी, तो आज संघ एवं भाजपा मोह में है। जहाँ तक किसान रैली के नारे पर प्रश्न है, तो वहां तो पहले ही ''संयुक्त'' शब्द जुड़ा हुआ है, अर्थात् उन्होंने तो लगभग चालीस से अधिक भिन्न-भिन्न गुटों को जोड़ रखा है। यह ठीक है कि- किसानों के नेताओं को भी मजहबी नाटों से दूर रहकर किसानों के मुद्दों पर केन्द्रित रहना चाहिए। किन्तु जब मुस्लिम तुष्टिकरण से संघ जैसा संघटन नहीं बचना चाहता तो टिकैत जी कैसे बचें? 'आर्य महासंघ' का इस विषय में स्पष्ट दृष्टिकोण है- हम न तो संघ के मुस्लिम तुष्टिकरण के पक्ष में हैं और न ही 'अल्लाह हो अकबर' जैसे उन्मादी मजहबी नारों के समर्थन में हैं। हम वेद के सिद्धान्तों को ही प्राणिमात्र एवं मनुष्यमात्र के हितकारी मानते हैं, तथा भविष्य में भी मानते रहेंगे। सभी राष्ट्रभक्त, धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ट जनता एवं आर्यों को भी ऐसे ही मान्य करना चाहिए! संशय में, अन्धविश्वास में, कल्पनालोक में जिन्हें जीने की आदत हो वे वहीं जियें। हमें यथार्थ का धरातल ही प्रिय है, हमारे अपने करोंडों मानववादी, प्राणी मात्र के रक्षक ठोस धरातल पर रहकर ही बच पाए एवं लाखों को पहले भी बचा पाए, तथा भविष्य में बचा पाएंगे।।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद, अध्यक्ष, आर्य महांसघ।

संध्या काल

भाद्रपदा-मास, शरद-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(23 अगस्त 2021 से 20 सितम्बर 2021)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 45 मिनट से (6.45 P.M.)

आश्विन-मास, शरद-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(21 सितम्बर 2021 से 20 अक्टूबर 2021)
प्रातः कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२५

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

ओम् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थः- मैं परमात्मा सब मनुष्यों के लिये आज्ञा देता हूँ कि सब मनुष्य इस संसार में शरीर से समार्थ होके सत्कर्मों को करते ही करते सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा करें, आलसी और प्रमादी कभी ने होवें। इसी प्रकार उत्तम कर्म करते हुए तुझ मनुष्य में इस हेतु से उलटा पापरूप दुःखद कर्म लिप्यमान कभी नहीं होता और तुम पापरूप कर्म में लिप्त कभी मत होओ। इस उत्तम कर्म से कुछ भी दुःख नहीं होता। इसलिए तुम स्त्रीपुरुष सदा पुरुषार्थी होकर उत्तम कर्मों से अपनी और दूसरों की सदा उन्नति किया करो।

दो बड़े विकट प्रश्न बारम्बार हमारे सामने आते रहते हैं- 1. **आर्य सभ्यता** यदि सवोच्च थी, ज्ञान विज्ञान सुख-सुविधा आदि सभी दृष्टि से सम्पन्न थी तो उसका पतन क्यों हुआ? **२. आजिविका**- आज आजिविका के लिए होने वाला संघर्ष ही इतना अधिक है कि संध्योपसना आदि आर्य कर्तव्यों के लिए समय ही नहीं मिलता क्योंकि प्रतिस्पर्धा है, संघर्ष है, बेरोजगारी है आदि आदि।

सर्वप्रथम आर्यों के पतन की चर्चा करते हैं इसका कारण ऋषि दयानन्द जी ने आलस्य और प्रमाद को कहा है। नीतिकारों का भी मानना है -

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीस्थो महान्रिपुः। व
न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चिद् वधः।

अर्थात्- आलस्य शरीर में स्थित बड़ा शत्रु है और प्रमाद तो मृत्यु ही है और जब आर्यों को आलस्य प्रमाद ने घेर लिया तब तो पतन में क्या संशय था? परन्तु लाखटके का प्रश्न तो यह है कि आर्यों में प्रमाद आलस्य आया कैसे? ऋषि कहते हैं **'जब बहुत साधन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या-द्वेष विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं ..... जब युद्ध विभाग में युद्धविद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है।'** आर्य भी इससे अछूते न रह सके यहाँ भी सब क्षेत्रों में इतनी वृद्धि हुई कि प्रतिस्पर्धा ही न रह गई। कहीं कोई मुकाबला था ही नहीं फिर बढ़े आलस्य प्रमाद, पक्षपात, अभिमान और अन्याय, परिणामस्वरूप पहले सम्प्रदायों मतों और फिर जातियों का जन्म इससे सामाजिक व राष्ट्रीय ढांचे का और अधिक पतन होता गया व पतन से ये सब और अधिक मजबूत होते गये। ये मत-पंथ, सम्प्रदाय व जाति जैसी व्यवस्थायें आलसी प्रमादियों के संरक्षण के लिए ही तो हैं।

आजीविका परिवार व समाज की उन मूल आवश्यकताओं में से है जिनके कारण हम समाजिक हैं। आजीविका मनुष्य को ऐसी स्थिति में डाल देती है कि वह कुछ और विचार नहीं पाता। किन्तु वास्तविकता यह है कि समाज का तन्त्र कमजोर होता है। तभी मनुष्य धन का दास होकर अन्य सभी कर्तव्यों को भूल जाता है। अतः समाज को सदैव शुभ स्वस्थ परम्पराओं से युक्त करते रहना चाहिए। उन्हीं में से एक बड़ी विशेष परम्परा है सदैव शुभकर्म करना, बिना रूके बधाओं से प्रभावित हुवे आलस्य और प्रमाद के बिना शुभ कर्मों की परम्परा अनवरत चलती रहनी चाहिए। इसी के लिए समाज में बारम्बार कार्य करते रहना चाहिए। उन समस्त परम्पराओं और रूढ़ियों को हटाने की भी आवश्यकता है जो हमें **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** के पवित्र मन्त्र का पालन करने से रोकती हैं। जैसे गणेश उत्सव या कॉवड यात्रा- जब समस्त समाज की युवा शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय चिंताओं से मुक्त हो कर्तव्यों को भूलकर एक उत्सव में खो जाता है। केवल कुछ बाजार की शक्तियों को छोड़कर जो छुट-पुट व्यापार इसमें कर लेती हैं, इससे हानि ही हानि है। सबसें बड़ी हानि अन्ध परम्पराओं को हरबार और भी अधिक पुष्ट कर देने से होती है जिससे पीढ़ियों की बर्बादी की पटकथा लिखी जाती है और हम पहचान ही नहीं पाते हैं। उपरोक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही जाना चाहिए कि वेद का सनातन सन्देश **कुर्वन्नेवेह कर्माणि** बारम्बार गृहस्थ की गलियों में गुञ्जायमान करने की आवश्यकता है।

साथ ही ऋषि दयानन्द जी ने परमात्मा की वेद वाणी रूपी वाटिका से गृहस्थों के लिए कुछ और भी पुष्पों को चुना है आओ परमात्मा द्वारा प्रदत्त उन निर्देशों की पवित्र पावन ध्वनि भी सुने-

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शंस्य पशून् में पाह्याथर्य पितुं में पाहि॥

अर्थ- हे स्त्री वा पुरुष! मैं तेरा वा अपने के सम्बन्ध से शरीरिक वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुख से युक्त होके मनुष्यादि उत्तम प्रजाओं के साथ उत्तम प्रजायुक्त होऊं। उत्तम पुष्टिकारक व्यवहारों से उत्तम पुष्टि युक्त होऊं। हे मनुष्यों में सज्जन वीर स्वामिन! मेरी प्रजा की रक्षा कीजिए। हे प्रशंसा के योग्य स्वामिन! आप मेरे पशुओं की रक्षा कीजिए। हे अहिंसक दयालो स्वामिन! मेरे अन्न आदि की रक्षा कीजिए। वैसे हे नारी! प्रशंसनीय गुणयुक्त तू मेरी प्रजा, मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर।

क्रमश ....

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अतः आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका** पर जाएं।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	07 सितम्बर	दिन-मंगलवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पू.फाल्गुनी
पूर्णिमा	20 सितम्बर	दिन-सोमवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पूर्वाभाद्रपदा
अमावस्या	06 अक्टूबर	दिन-बुधवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-हस्त
पूर्णिमा	20 अक्टूबर	दिन-बुधवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-रेवती

सहज सरल सांख्य-१६

- आचार्य सतीश, दिल्ली

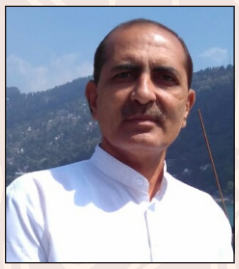

फिर प्रकृति का विवेक हो जाने पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ता?

उनके लिए प्रकृति भोगापवर्ग की सिद्ध कर चुकी होती है, प्रयोजन को पूर्ण कर चुकी होती है, इसलिए आत्मज्ञान अथवा विवेक हो जाने पर आत्माओं पर प्रकृति की प्रवृति का कोई प्रभाव नहीं रहता। यह ऐसे ही है जैसे नर्तकी के सभा मंच पर नृत्य प्रदर्शन करते हुए भी, जिनकी तृप्ति हो जाती है वे छोड़कर चले जाते हैं उनके लिए प्रदर्शन नहीं के बराबर रह जाता है।

जैसे कुलवधु के दोष पता चल जाने पर वह लज्जाशील हो सम्मुख नहीं जाती वैसे ही प्रकृति के परिणामिता, दु:खात्मकता आदि दोषों के जान लेने के बाद उसकी निवृति मुक्तात्मा के लिए हो जाती है।

आत्मा सदा चेतन है, मुक्त व बद्ध नहीं। वह अविवेक से बद्ध व विवेक से मुक्त अवस्था को प्राप्त होती है। एक पशु जब रस्सी से बन्धा होता है वह बद्ध कहा जाता है। पर जब रस्सी से छूट जाता है, तो मुक्त कहाता है। ऐसे ही प्रकृति जब संग होती है तो आत्मा बद्ध होती है जब उसका संग छूट जाता है तो मुक्त होती है।

तो प्रकृति कैसे आत्मा के बन्ध या मोक्ष का कारण बनती है?

प्रकृति सात रूपों से आत्मा को बांधती है और जैसे रेशम का कीट एक मार्ग से मुक्त होता है वैसे ही आत्मा एक मार्ग से मुक्त होती है। वह एक मात्र मार्ग है विवेकज्ञान। अन्यथा तो धर्म-अधर्म, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, अज्ञान- ये सात भाव जो प्रकृति जन्य हैं, ये आत्मा के बन्ध का कारण बनते हैं।

लेकिन धर्म और वैराग्य भी आत्मा के बन्ध का कारण कैसे?

धर्म आदि का अनुष्ठान अन्त:करण की शुद्धि में उपयोगी तो होता है लेकिन बन्ध का मूल निमित्त अविवेक की अवस्था धर्म, वैराग्य आदि के अनुष्ठान काल में भी बनी रहती है। विवेक ज्ञान होने पर इनका भी अस्तित्व नहीं रहता।

फिर अविवेक के उच्छेद का उपाय क्या है?

यह त्याग देने पर कि समस्त विकार आत्मा नहीं है, मूल प्रकृति आत्मा नहीं है। इस त्याग भाव की दृढ़ता के साथ तत्वज्ञान के अभ्यास से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का साक्षात्कार हो जाना ही विवेक है।

तो यह विवेक ज्ञान सबको समान रूप से क्यों नहीं होता?

विवेक ज्ञान के लिए प्रवृत्त अधिकारियों में परस्पर भेद हो जाने के कारण से यह नियम नहीं कि सबको समान रूप से एक साथ मोक्ष हो जाए। किसी को एक ही जन्म में हो सकता है, किसी को नहीं।

फिर विवेक ज्ञान होते ही शरीरपात क्यों नहीं हो जाता?

विवेक ज्ञान संचित कर्मों को तो भस्म कर देता है लेकिन जो कर्म फलोन्मुख हो चुके हैं, लेकिन जिन प्रारब्ध कर्मों के फलों का उपभोग चल रहा है वे चलते रहने के कारण उसी समय शरीर पात नहीं होता है। ऐसा ही मध्य विवेकी व्यक्ति जीवन मुक्त कहलाता है। देह बने रहने से अभी जीवित है और विवेक ज्ञान हो जाने से मुक्त है।

ऐसे जीवनमुक्त व्यक्ति ही उपदेश्य है, उसका उपदेष्टा होना चाहिए। अत: जीवन मुक्त विवेक सम्पन्न की सिद्धि होती है। श्रुति का उपदेश भी इसी के लिए है। श्रुति का उपदेश भी ऐसा ही व्यक्ति देगा। यदि जीवन मुक्त न हो तो अन्ध परम्परा चल पड़ती है। अत: आत्मज्ञानी, विवेकज्ञानी, जीवनमुक्त से ही विवेक की परम्परा चलती है।

जब जीवन मुक्त के कर्म ही शेष नहीं रहे तो जीवन कैसे रहेगा?

फलोन्मुख कर्मों का नाश नहीं होता, वे फल पूरा करके ही समाप्त होते हैं। जैसे कुम्हार का चाक दण्डे से घुमाया हुआ घुमाने के साधन दण्डे के हटा लेने के कुछ काल बाद तक भी घूमता रहता है ऐसे ही। फिर कर्मों का संस्कार लेश भी नहीं होता है। अत: किये हुए कर्मों के भोगरूपी संस्कार लेश से अर्थात् संस्कार के आभास से जीवन मुक्त के शरीर धारण की सिद्धि होती है।

अत: सारांश यही है कि पूर्ण विवेक से ही समस्त दुखों की निवृति होती है। तभी पूर्ण सफलता अर्थात् मुक्ति होती है, अन्य किसी उपाय से नहीं।

'इति अध्याय-३'

क्रमश ....

23 अगस्त-20 सितम्बर 2021 भाद्रपद ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती	अश्विनी	भरणी	कृतिका
कृष्ण प्रतिपदा 23 अगस्त	कृष्ण द्वितीया 24 अगस्त	कृष्ण तृतीया 25 अगस्त	कृष्ण चतुर्थी 26 अगस्त	कृष्ण पंचमी 27 अगस्त	कृष्ण षष्ठी 28 अगस्त	कृष्ण सप्तमी 29 अगस्त
कृतिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
कृष्ण अष्टमी 30 अगस्त	कृष्ण नवमी 31 अगस्त	कृष्ण दशमी 1 सितम्बर	कृष्ण दशमी 2 सितम्बर	कृष्ण एकादशी 3 सितम्बर	कृष्ण द्वादशी 4 सितम्बर	कृष्ण त्रयोदशी 5 सितम्बर
मघा	पू० फाल्गुनी	उ० फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा
कृष्ण चतुर्दशी 6 सितम्बर	कृष्ण अमावस्या/प्रतिपदा 7 सितम्बर	शुक्ल द्वितीया 8 सितम्बर	शुक्ल तृतीया 9 सितम्बर	शुक्ल चतुर्थी 10 सितम्बर	शुक्ल पंचमी 11 सितम्बर	शुक्ल षष्ठी 12 सितम्बर
अनुराधा	ज्येष्ठा/मूल	पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा
शुक्ल सप्तमी 13 सितम्बर	शुक्ल अष्टमी 14 सितम्बर	शुक्ल नवमी 15 सितम्बर	शुक्ल दशमी 16 सितम्बर	शुक्ल एकादशी 17 सितम्बर	शुक्ल द्वादशी/त्रयोदशी 18 सितम्बर	शुक्ल चतुर्दशी 19 सितम्बर
पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल पूर्णिमा 20 सितम्बर					श्री कृष्णचन्द्र जयन्ती भाद्रपद कृष्ण अष्टमी 30 अगस्त	

21 सितम्बर-20 अक्टूबर 2021 आश्विन ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
	उत्तराभाद्रपदा	रेवती	अश्विनी	अश्विनी	भरणी	कृतिका
	कृष्ण प्रतिपदा 21 सितम्बर	कृष्ण द्वितीया 22 सितम्बर	कृष्ण द्वितीया 23 सितम्बर	कृष्ण तृतीया 24 सितम्बर	कृष्ण चतुर्थी 25 सितम्बर	कृष्ण पंचमी 26 सितम्बर
रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	मघा
कृष्ण षष्ठी 27 सितम्बर	कृष्ण सप्तमी 28 सितम्बर	शुक्ल अष्टमी 29 सितम्बर	शुक्ल नवमी 30 सितम्बर	शुक्ल दशमी 1 अक्टूबर	शुक्ल एकादशी 2 अक्टूबर	शुक्ल द्वादशी 3 अक्टूबर
पू० फाल्गुनी	उ० फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा
कृष्ण त्रयोदशी 4 अक्टूबर	कृष्ण चतुर्दशी 5 अक्टूबर	कृष्ण अमावस्या 6 अक्टूबर	शुक्ल प्रतिपदा 7 अक्टूबर	शुक्ल द्वितीया 8 अक्टूबर	शुक्ल तृतीया/चतुर्थी 9 अक्टूबर	शुक्ल पंचमी 10 अक्टूबर
ज्येष्ठा	मूल	पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा
शुक्ल षष्ठी 11 अक्टूबर	शुक्ल सप्तमी 12 अक्टूबर	शुक्ल अष्टमी 13 अक्टूबर	शुक्ल नवमी 14 अक्टूबर	शुक्ल दशमी 15 अक्टूबर	शुक्ल एकादशी 16 अक्टूबर	शुक्ल द्वादशी 17 अक्टूबर
पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती		विजय दिवस आश्विन शुक्ल दशमी 15 अक्टूबर		
शुक्ल त्रयोदशी 18 अक्टूबर	शुक्ल चतुर्दशी 19 अक्टूबर	शुक्ल पूर्णिमा 20 अक्टूबर				

योग दर्शन-२

-आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

क्या करुँ कुछ समझ नहीं आता, रोशन लाल बिलख उठे। **'बस भक्त इतनी सी बात'** संत बोले तो रोशनलाल जैसे उंघते से जग गये। जी स्वामी जी, इतना ही कह पाये। हाँ-हाँ यह भी कोई समस्या है? अरे भक्त इसका उपचार तो इतना आसान और तुरन्त प्रभावशाली है कि तुम्हारे सुनते ही और मन में उस पर आचरण करने का भाव आते ही इसी समय तुम्हारे हृदय को दग्ध करने वाली बीमारी के समाप्त होने का अनुभव होगा। मुस्कुरा कर संत ने रोशनलाल की ओर मधुर दृष्टि डालकर कहा हाँ-हाँ मैं सत्य कह रहा हूँ। इसमें किंचित भी असत्य नहीं है। रोशनलाल ने पुनः संत के पैर छुए तो स्वामी जी मुझे बताइये, मेरा जीवन बचा लीजिए। मैने तो कई बार आत्महत्या का विचार भी बनाया।

संत बोले- सुनों! तुमने अहिंसा का नाम सुना है? हाँ किसी की हत्या न करना ही अहिंसा है, किसी से हिंसा न करना। नहीं! भोले भक्त अहिंसा कहते है आप उपकार करने वाले के उपकार के विषय में मन में उपकार का भाव न आये। रोशनलाल ने संत की ओर देखा। संत के मुँह पर पूर्ण आनन्द के साथ मंद-मंद मुस्कान फैल रही थी। नहीं विश्वास आ रहा है तो अभी कर के देखों! क्या करुँ? भगवन मैं कुछ समझा नहीं! रोशनलाल के दोनों हाथ प्रार्थना रूप में जुड़े हुये थे। देखों जायदाद का झगड़ा है, तुमने उसी उपलक्ष में घर-परिवार छोड़ा और यह जीवन भी छोड़ने की सोच जाते हो? हाँ प्रभु! रोशनलाल एकटक संत की ओर देख रहा था। क्या घर-परिवार और इस जीवन तथा सब से अधिक जीवन में शन्ति से अधिक मूल्यवान भी इस जगत में कुछ है? नहीं महाराज! रोशनलाल के हाथ जुड़े हुये ही थे। क्या वह करोड़ों की जायदाद इन सबसे मूल्यवान है? संत के मुख पर वही शान्ति और मुस्कान बिखरी हुई थी। नहीं, नहीं, नहीं प्रभु! बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं। भगवन मैं भला स्वयं को ही स्वयं ही दुःख में डुबाये हुये था। घर-परिवार सब को मैंने ही अकारण कष्ट दिये। प्रभु के उपकारों को भी भूला रहा जिसने मुझे इतना अच्छा परिवार और यह जीवन दिया आप धन्य हैं, आप साक्षात सत्य संत रूप में मेरे उद्धार के लिए पधारे हैं। अरे मैं कितना मूर्ख हूँ, निकृष्ट हूँ, अज्ञानी हूँ। भगवन मैंने सोच लिया यह झगड़े की जायदाद बड़े भाई के पास जाकर उनके चरणों को पकड़कर उन्हें अर्पित कर दूगाँ बिना और बिलम्ब के आप के वचन सत्य हैं प्रभु मेरे मन का सारा दुख, सारा बोझ क्षण मात्र में चूर-चूर हो गया। आप धन्य हैं आप धन्य हैं रोशनलाल दण्डवत चरणों में लेट गये। संत ने स्नेह से सिर पर हाथ फेरा 'उठो भक्त, तुम पर प्रभु की कृपा है जो इतनी शीघ्र सब कुछ समझ कर निर्णय कर लिया। ये अहिंसा है अद्भुत, अतुल्य सिद्धान्त। जाओ और इस अहिंसा भाव को कार्यावन्ति करने में देरी न लगाना। मनुष्य का मन बहुत चलायमान होता है पलिटयाँ मारता रहता है।

रोशनलाल उठे पुनः चरण स्पर्श किये और भेंट स्वरूप कुछ धन संत के चरणों में रख दिया। सुनों भक्त ये सब अपने पास रखो। मैनें तो तुम्हें मन के पहले पायदान पर लाने का प्रयत्न किया और तुम मुझे तीसरे पायदान अस्तेय से गिराना चाहते हो। बिना देरी किय इस शुभ विचार को क्रियान्वित करो। तुम्हारा कल्याण हो।

रोशनलाल ने आदेशानुसार भेंट उठाकर जेब में रख ली और पुनः चरण स्पर्श कर अपने ठहरने के स्थान से अपना सामान समेटा और घर की ओर प्रस्थान किया। एक बार संत की ओर पीछे मुड़कर देखा, क्या मुख है, जैसे कोई देवदूत हो? घर आते ही रोशनलाल ने पत्नी और दोनों पुत्रों को अपने पास बुलाया। उन्हें वापस आया जानकर उन तीनों के मुर्झाये चेहरों पर जैसे नया जीवन आ गया हो । तीनों ने उनके चरण स्पर्श किये। तीनों के मुख पर एक ही स्वर था- कहाँ चले गये थे। हम बहुत दुखी रहे, कह नहीं सकते।

रोशनलाल ने अपने मुहँ पर उंगली रखी और उन्हें चुप रहने का संकेत कर बोले 'सुनों! सब दुःखों का अंत हो चुका है आप सब भी मेरी भांति आनन्दित हो जाओगे बस मेरे विचार पर अपनी सहमति दो। आप को हमारी सहमति की कोई आवश्यकता नहीं है आप इस घर-परिवार के स्वामी हैं यदि हमें घर छोड़ कर किसी आश्रम में रहने को कहोगे तो हम तैयार हैं, तीनों ने स्वर से स्वर मिलाया।

वाह-वाह मैं कितना भाग्यशाली हूँ, ऐसा परिवार है मेरा तो सुनों इस सब दुख के कारण विवादित जायदाद को मैं बड़े भाई साहब को समर्पित करने के लिए तुम लोगों के साथ अभी उनके निवास पर जाऊँगा। चलोगे मेरे साथ? आप जैसे भी करेंगे, जहाँ भी जाओगे हम आपके साथ से तनिक भी पीछे नहीं रहेंगे। हम सब सुखी रहें इस से बढ़कर क्या यह छोटी सी जायदाद अर्थ रखती है। हमारे निर्वाह के लिए और भी बहुत कुछ शेष रहेगा। चलिये अभी चलते हैं। तीनों का एक ही स्वर था।

सूर्य भगवान अस्ताकाल की ओर बढ़ रहे थे। ये चारों बड़े भाई के घर की ओर बढ़ रहे थे। चारों बड़े भाई सूर्यलाल के द्वार पर पहुँच गये। द्वार पर नौकर ने जब चारों को देखा और विशेषकर रोशनलाल को गेरुवें वस्त्रों में तो चकित रह गया। उसने अपनी आँखें मली और तुरन्त दौड़कर रोशनलाल जी के पैर छुये तथा उनकी पत्नी उषा जी को प्रणाम किया। आइये-आइये बैठक में बैठिये मैं मालिक को समाचार देता हूँ। नौकर चारों को बैठक में बैठाकर दौड़कर अन्दर मालिक को सूचना देने गया। सूर्यलाल जी उनके आगमन को सुनकर घबरा गये, पता नहीं क्या बात हैं? अचानक इस समय इस तरह आने का क्या कारण है। दौड़े-दौड़े बहार आये और बैठक में घुसते ही चारों को खड़े होते हुये देखकर भौंचक रह गये। बोल नहीं निकला, सब खैर तो है। कुछ क्षणों तक तो रोशनलाल को इस वेष में देखकर पहचान नहीं सका। परन्तु नौकर ने परिचय तो दिया था। है तो अपना भाई और अपना परिवार ही। जब तक सूर्यलाल कुछ कहते रोशनलाल ने दौड़कर सूर्यलाल के पैर पकड़ लिए और साथ ही उषा देवी और दोनों पुत्र भी उनके पैरों में झुक गये। सूर्यदेव की आँखें भर-भरा आई हिचकी लग गई। झुककर रोशनलाल को उठाने लगे। 'अरे पागल हो गया है क्या उठ! तू तो मेरी गोद खिलाया है, यह क्या करता है। इन सबको भी परेशान कर रहा है। क्या बात है? क्या कष्ट है? तू तो सहोदर है, बता क्या हुआ? किसी ने कुछ कहा, कुछ सताया। मेरे रहते तू दुखी हो या मेरा परिवार दुखी हो, लानत है मुझ पर।' सूर्यलाल रोते रोते बोल रहे थे। रोशनलाल को उठाया तो चेहरा आँसुओं से तर था। उन्होंने सब को बैठाया। बाहर से नौकर झाँक-झाँककर देख रहा था। क्या बात है? इनमें तो मुकदमे बाजी चल रही है। मैं तो समझ रहा था। झगड़ा करने आये हैं चारों मिलकर। यह दृश्य देखकर उस सहृदय सेवक के नेत्र भी भर आये।

सूर्यलाल ने सेवक को आवाज लगाई। गोविंद! जल्दी ठंड़ा पानी ला। तुरन्त ही मालकिन के साथ नौकर जल लेकर आ गया। बड़ी भाभी को देखकर रोशनलाल उनके भी चरणों में झुक गये और साथ में अन्य तीनों भी। भाभी रोशन लाल को तुरन्त पहचान भी नहीं पाती परन्तु नौकर ने पहले ही बता दिया था। भाभी ने चारों के सिर पर हाथ फेरा और पुनः बैठाया। तभी सूर्यलाल का इकलौता बेटा यशपाल भी आ गया। नौकर ने उसे वस्तु स्थिति से अवगत करा दिया था। उसने भी सभी के पैर छुये और एक स्थान पर बैठ गया।

अभी तक सभी चुप थे। रोशनलाल बोले भाई साहब! सूर्यलाल ने मन ही मन भगवान को याद किया 'कुछ अनिष्ठ न हो' बोलो रोशनलाल बोलो, सूर्यलाल ने उत्तर दिया- 'भाई साहब मैं विवादित जायदाद आपके चरणों में समर्पित करने के लिए सहपरिवार आया हूँ, कृपया स्वीकार करें। सूर्यलाल जैसे आसमान से भूमि पर गिर पड़े हों, 'हैं! ये क्या? मैं कितना पागल हूँ? क्या सोच रहा था?' रोशनलाल की पत्नी और दोनों बच्चे हाथ जोड़कर खड़े हो गये भाव था 'हाँ हमारी भी यही प्रार्थना है।'

सूर्यलाल रोने लगे, मुँह दबाने पर भी रोने के स्वर फूट पड़े। यशपाल चकित था। रोते-रोते सूर्यलाल ने खड़े हुये, तीनों को बैठाया। हाथ से इशारा करते रहे, ठहरो-ठहरो। कुछ ढ़ाढ़स बाँध कर बोले- मैं कौन हूँ? चारों ने एक स्वर में कहा- हमारे बड़े हो, पूज्य हो। 'पूज्य हूँ या इतना नीच हूँ कि अपने बच्चों से कुछ छीनू। यशपाल की अम्मा देख रही है, अरे यशपाल कुछ सुना। नहीं-नहीं ऐसा कुछ नहीं होगा। मैं कल ही न्यायालय में जाकर केस वापिस का प्रार्थना पत्र लगाऊँगा। इस सम्पत्ति पर तुम्हारा ही अधिकार रहेगा। अरे हमारे पास क्या कुछ दिया हुआ नहीं है भगवान ने और पत्नी तथा पुत्र को देखा। दोनों ने सहमति में सिर हिलाये, हाँ हाँ ऐसा कैसे होगा? तुम क्या गैर हो।? अरे तुम तो मेरा खून हो मेरे शरीर के अंग हो क्या अपने खून अपने अंग को काट कर फेंक दूँ। सूर्यलाल को ईश्वरीय प्रेरणा मिल चुकी थी।

नौकर तब तक चाय-पानी का प्रबन्ध कर लाया था। आप अनुमान कर सकते है उस समय के वातावरण और अनुभूतियों का। क्या अभी कुछ और शेष है अहिंसा के प्रतिपादन के लिए?

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

३७. सृष्टि-जो कर्ता की रचना करके कारण द्रव्य किसी संयोग विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप हो कर वर्तमान में व्यवहार करने के योग्य है, वह **सृष्टि** कहाती है।

व्याख्या-**सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्ति पूर्वक मेल होकर नानारूप बनना।** -सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश

अपने सर्वज्ञ ज्ञान के कारण द्रव्य मूल प्रकृति के तत्त्वों (परमाणु सदृश) को परमेश्वर युक्ति पूर्वक विशेष संयोग करके मिलाता है, तब यह विशिष्ट-विशिष्ट संयोग से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमान में व्यवहार करने के योग्य होती है और सृष्टि कहाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने ज्ञान से युक्तिपूर्वक सृष्टि के पदार्थों को विशेष संयोग से मिलाकर नवीन पदार्थों का निर्माण करता है, यह मानुषी सृष्टि होती है।

३८. जाति-जो जन्म से लेके मरण पर्यन्त बनी रहे। जो अनेक व्यक्तियों में एकरूप से प्राप्त हो। जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं, वे **'जाति'** शब्दार्थ से लिये जाते हैं।

व्याख्या-जो जन्म से लेके मरणपर्यन्त बनी रहे तथा अनेक व्यक्तियों में एकरूप से प्राप्त हो । जैसे-मनुष्य और पशु, मनुष्य का जो विशिष्ट आकार-प्रकार, इन्द्रियादि के स्थान, ज्ञान धारण और भाषण आदि है, यह एक संस्थान और विशिष्ट गुणों का एकत्र निधान है, यह अरबों में पाया जाता है, यही अनेकों में पाया जाने वाला गुणयुक्त संस्थान विशेष-जाति से कहा जाता है। जो पृथक्-पृथक् अरबों लोग हैं उन्हें व्यक्ति कहा जाता है। इन व्यक्तियों में जाति निहित होती है, व्यक्ति नष्ट होते रहते हैं, परन्तु जाति नष्ट नहीं होती है। पशु का भी संस्थान विशेष और गुण का एकत्रीकरण जाति से कहा जाता है और यह भी सभी अरबों-खरबों पशुओं में जिन्हें व्यक्ति कहते हैं, निहित होता है। ईश्वर ने मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि जो निर्मित किये हैं, इन्हें जाति से कहा जाता है। यथा मनुष्य जाति, पशु जाति; पशुओं में-गो जाति, अश्व जाति तथा वृक्ष जाति आदि।।

३९. मनुष्य-अर्थात् जो विचार के बिना किसी काम को न करे, उसका नाम **'मनुष्य'** है।

व्याख्या-मनुष्य को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूँ। (सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

विचार करके जो यथायोग्य स्वात्मवत् अर्थात् जैसे अपने प्रति दूसरों से चाहता है वैसा ही दूसरों के प्रति सुख, दुःख, हानि, लाभ आदि में व्यवहार करे, मनुष्य कहाता है, इसके विपरीत व्यवहार करना मनुष्यपन नहीं है। सभी कार्य विचार करके करे। आवश्यकता, सम्भाव्यता, सामर्थ्य, लाभ, हानि आदि का निश्चय करके ही कार्य को करे, तभी सिद्धि मिलती है, यही **मनुष्यता** है।

४०. आर्य-जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुण युक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उन को **'आर्य'** कहते हैं।

व्याख्या-विज्ञानी, सत्यवादी, विनयी, दयालु, अनुग्रही, धैर्यशाली, संयमी, दानशील, सदाचारी, न्यायकारी आदि श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्या अर्थात् वेद एवं आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान से युक्त गुणवालों तथा आर्यावर्त्त देश में सब दिन से रहने वालों को **आर्य** कहते हैं।

४१. आर्यावर्त्त देश-हिमालय, विन्ध्याचल, सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्र नदी इन चारों के बीच में जहाँ तक उन का विस्तार है, उनके मध्य में जो देश है, उसका नाम **'आर्यावर्त्त'** है

व्याख्या-**आर्यावर्त्त देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं परन्तु इस की अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है । इन चारों के बीच में जितना देश है, उसको** 'आर्यावर्त्त' **कहते हैं। और जो इसमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं।** (सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

आर्यों के आदि से इस धरा पर रहने के कारण इस को आर्यावर्त्त कहते हैं। आर्यों की संख्या वृद्धि के साथ-साथ भौगोलिकता में भी वृद्धि होती जाती है, आर्यों के निवास के कारण वह स्थान भी निःसन्देह आर्यावर्त्त से ही जाना जायेगा। ऐसा नहीं है कि पहले वहाँ कोई अन्य असभ्य जाति रहती थी जिस को हटाकर वे वहाँ रहने लगे हों, अपितु वहाँ किसी का भी निवास नहीं था, सर्वप्रथम आर्यों ने ही उसको निवास के योग्य बनाकर निवास करना प्रारम्भ किया और वह स्थान भी आर्यावर्त्त का अंगभूत बन गया। जब यह आर्य जाति अविद्या, आलस्य, प्रमाद आदि के कारण वेद-विमुख होने लगी तो इसका पराभव और स्थान संकुचित होने लगा, तब ये आर्य लोग अपने पूर्वजों के द्वारा पोषित-पालित अपनी पैतृकभूमि को गंवाकर अवशिष्ट भूमि में ही रहने के लिये विवश और बाध्य हो गये। वर्त्तमान में यह आर्यावर्त्त कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कच्छार तक के भूभाग में सीमित है।

४२. दस्यु-अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी, आर्यों के स्वभाव निवास से पृथक् डाकू, चोर, हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य है, वह **'दस्यु'** कहाता है।

व्याख्या-अनार्य (अनाड़ी) अर्थात् अधार्मिक, अविद्वान्, मद्यपायी आर्यों के स्वभाव से पृथक् अर्थात् क्रूर, मांसभक्षी, नास्तिक और परपीड़क है, आर्यावर्त्त से पृथक् रहते हैं तथा जो आर्यावर्त्त में रहते हुए भी आर्यत्व से रहित क्रूर तथा मांसभक्षी, मद्यपायी आदि हैं वे भी अनार्य हैं। ये अनार्य जो डाकू, चोर, हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य हैं, **दस्यु** कहाते हैं।

४३. वर्ण-जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया है, वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।

४४. वर्ण के भेद-जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि हैं, वे **'वर्ण'** कहाते हैं।

संयुक्त व्याख्या-जैसा गुण और कर्म हो उसी के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र होते हैं। पूर्वजन्म के संस्कारों, वर्त्तमान जन्म में माता-पिता के संस्कारों एवं शिक्षा आदि के कारण अर्जित गुणों एवं कर्मों से वर्ण को प्राप्त होते हैं। केवल जन्म के आधार से वर्ण-व्यवस्था नहीं होती है। अपितु उच्चकुल में जन्मा बालक भी संस्कार एवं विद्या से रहित होकर गुण तथा कर्म से भ्रष्ट हुआ शूद्र है, यदि अधार्मिक है तो अनार्य हुआ, वहीं निम्नकुल में उत्पन्न हुआ पूर्वधृत संस्कार, गृहीत विद्या तथा अच्छे कर्मों से श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर उच्चकुल का आधान करता है,यदि विद्या न भी हो, परन्तु धार्मिकता हो; तो आर्यावर्त्तीय होने के कारण सभी आर्य हैं। परन्तु जो धर्महीन एवं भ्रष्ट हो, भले ही वह विद्वान् ही क्यों न हो, तो वे सभी अनार्य ही हैं।

क्रमश ....

प्राचीन भारत में नारीवाद-२

-सोनू आर्य, हरसौला

इसी प्रकार सातवीं शताब्दी मे थानेसर हरियाणा में हर्षवर्धन के राज कवि बाणभट्ट कादंबरी में महाश्वेता का वर्णन इस प्रकार करते हैं **'ब्रह्मसूत्रेण पवित्री कृत कायम'** अर्थात जिसका शरीर यज्ञोपवीत धारण करने से पवित्र था। यज्ञोपवीत धारण का स्पष्ट अभिप्राय विद्या प्राप्ति के अधिकार से था। न केवल शास्त्र अपितु शस्त्र विद्या में भी प्राचीनकालीन नारी निपुण होती थी। यथा-'यदि किसी कारण राजा सैन्य नेतृत्व न कर सके तो उसकी सुयोग्य रानी सेनापति बनकर संग्राम में विजय प्राप्त करे। नारी का यह सैनिक रुप महाभारत में द्रष्टव्य है। जब शांति यज्ञ के लिए महारथी अर्जुन सिंधु देश की सीमा पर पहुंचते हैं तो जयद्रथ पुत्र उन्हें युद्ध के कारण आया हुआ जान भय से मूर्छित हो जाते हैं तो जयद्रथ पत्नी, दुर्योधन की बहन दृशला सैनिक वेशभूषा धारण कर रणभूमि में सैन्य नेतृत्व करती है। दशरथ पत्नी कैकयी, अर्जुन पत्नी चित्रांगदा, पांडु पत्नी माद्री और घटोत्कच पत्नी मौरवी कुशल सारथी व योद्धा मानी जाती हैं। वेदों के अनुसार 'रानी राजा से कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूँ जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो वैसे मैं स्त्रियों की न्याय करने वाली हूँ जैसे पूर्व काल में नारियां प्रजास्थ नारियों की न्यायाधीश हुई हैं।' उपरोक्त वर्णित वैदिक शिक्षा व्यवस्था के कारण ही ऋग्वेद में नारी को यज्ञ में ब्रह्मा (सबसे बड़े विद्वान का पद) बनने की अधिकारिणी बताया गया है। वेदोक्त नारी गरिमा को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती में इस प्रकार बताया है -

यूं ही यहां की नारियों ने धर्म का पालन किया।
आश्चर्य क्या फिर ईश ने जो दिव्य बल उनको दिया।

महर्षि दयानंद के अनुसार कन्यायें पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत एवं विद्या प्राप्त कर युवक पति का वरण करें। विस्तृत वैदिक शिक्षा प्रणाली, आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों तथा महाकाव्यों के व्यावहारिक दृष्टांतों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में कन्याओं का विवाह बाल्यावस्था में नहीं अपितु संपूर्ण विद्या प्राप्ति पश्चात पूर्ण युवावस्था में कन्याओं की इच्छानुसार किया जाता था। संपूर्ण विश्व इतिहास में केवल भारतीय संस्कृति में ही स्त्रियों को जीवन में महत्वपूर्ण विवाह संस्कार मे इतनी स्वतंत्रता थी कि वे स्वेच्छा से जीवनसाथी चुन सकें। भारत में इस परंपरा को **स्वयंवर (अपना वर स्वयं चुनना)** कहा जाता था। मनु के अनुसार 'चाहे कन्या मरणपर्यंत पिता घर में बिना विवाह बैठी रहे किंतु गुण हीन पुरुष से कभी विवाह न करें।' इतिहास में कई प्रकरण ऐसे भी आए जब कन्या का विवाह उसकी इच्छा विरुद्ध तय किया गया। ऐसे समय पर गंधर्व विवाह अर्थात् कन्या द्वारा अपनी पसंद के पुरुष से विवाह वैध माना गया है। महाभारत में रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह शिशुपाल से तय होने पर रुक्मिणी के आह्वान् पर श्री कृष्ण उसका हरण कर विवाह करते हैं। इसी प्रकार बलराम द्वारा सुभद्रा का दुर्योधन से विवाह तय होने पर स्वयं श्रीकृष्ण उसे अर्जुन के साथ गंधर्व विवाह का सुझाव देते हैं। महाभारत में ही काशी राजकन्या अंबा शाल्व नरेश को अपना पति मान चुकी थी। उसका हरण गंगापुत्र करते हैं किन्तु जब भीष्म जी को यह ज्ञात हुआ तो अंबा को उनकी इच्छानुरूप सकुशल शाल्व नरेश के पास भेज दिया गया। स्वेच्छा से विवाह की रामायण में सुलभा तथा महाभारत में घटोत्कच पत्नी मोरवी की प्रतिज्ञा विख्यात है। वैवाहिक स्वतंत्रता के साथ-साथ विवाह उत्सव पर दी जाने वाली अधिकतर शुभकामनाएं कल्याणी वधु के लिए ही समर्पित हैं। **'हे वधू! तू अपने सुंदर व्यवहार से अपने ससुर-सास, ननंदो व देवरों में साम्राज्ञी के तुल्य सम्मान और स्नेह प्राप्त कर'** वधू को साम्रज्ञी संबोधन वेद की नारी के प्रति उदात्त भावना को ही दर्शाता है। सप्तपदी (विवाह का एक चरण के मंत्रों में वधू के लिए प्रथम में अन्न, द्वितीय में बल, तृतीय में धन और ज्ञान, चतुर्थ में पति से सुख, पंचम में संतान व प्रजा पालन, षष्ठ में ऋतु अनुकूल गृहस्थ कार्यकुशलता, सातवें में पति संग मित्र समान साथ चलने आदि की शुभकामनाएं की गई हैं। स्पष्ट है विवाह जैसे जीवन के अति विशिष्ट अवसर पर नारी को जितनी स्वतंत्रता वैदिक व्यवस्था में प्राप्त थी उतनी अन्यत्र दुर्लभ ही है।

न केवल विवाह अपितु विशेष परिस्थितियों मे पुनर्विवाह का स्पष्ट अधिकार हमारे प्राचीन ग्रंथों में स्त्री-पुरुषों को दिया गया है। वेदों में **'पति के कारणवश नष्ट हो जाने, अता पता न मिलने, मर जाने, नपुंसक होने तथा पतित होने पर पत्नी को अन्य पति करने का विधान है।'** जयशंकर प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध नाटक **ध्रुवस्वामिनी** में चंद्रगुप्त से पुनर्विवाह करने के समर्थन में उक्त वेद प्रमाण उद्धृत किया था। मनु के अनुसार **'वह स्त्री यदि अक्षत योनि हो चाहे वह पति के घर गई आई भी हो वह दूसरे पति के साथ पुनर्विवाह कर सकती है।'** महर्षि दयानंद के शब्दों में **'जिस स्त्री व पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात अक्षत योनि स्त्री व अक्षत वीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री व पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए।'** सगाई निश्चित करने के बाद और विवाह से पूर्व जिस कन्या का पति मर जाए उस कन्या को पति का छोटा भाई अथवा दूसरा पति पूर्व वर्णित विवाह के विधान के अनुसार प्राप्त कर लें। डॉक्टर अंबेडकर के अनुसार 'कौटिल्य के समय में किसी एक बार विवाही गई स्त्री अथवा विधवा के पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं था। कोई स्त्री अपने पति की मत्यु के बाद धर्म परायण जीवन यापन करने की इच्छा करती है तो वह तुरंत अपनी स्थाई निधि और गहनों **(स्थाप्याभरण)** को प्राप्त करने के साथ-साथ बकाया देय शुल्क भी प्राप्त करने की हकदार है।' यदि इन दोनों को प्राप्त करने के बाद वह पुनर्विवाह कर लेती है तो उसे इन दोनों को उनके मूल्य पर ब्याज सहित लौटाना होगा। वह दूसरा विवाह करना चाहती **(कुटुंबकर्मा)** है तो उसको पुनर्विवाह के समय (निवेशकाले) वह सब दिया जाएगा, जो उसे उसके ससुर या उसके पति अथवा दोनों ने दिया था। स्त्रियाँ कब पुनर्विवाह कर सकती हैं यह पतियों के प्रदेश या विदेश में प्रवास के प्रसंग में स्पष्ट किया गया है। विदेश में प्रवास की समय अवधि और शर्तें लगभग उसी प्रकार की हैं जिस प्रकार का प्रावधान मनुस्मृति में किया गया है क्योंकि विवाह का प्रयोजन ही सृष्टि चक्र को संचालित करना है।

क्रमश ....

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

सत्र से पूर्व मैं अपनी प्राकृतिक स्वभाव से जूझ रहा था कि एक ही सत्र में मन के कपाट खुल गये और दर्पण से जिस प्रकार धूल हट जाती है। उसी प्रकार से यहाँ आने पर संस्कारों का पुनः जागरण हुआ और अपने स्वरूप को पहचाने का अवसर प्राप्त हुआ।

आदरणीय आचार्य जी का आभार है कि उन्होने अपनी ओजस्वी वाणी से हमें एक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की।

अब मैं संस्कार (पुरोहित) के लिए अपने को तैयार करुंगा और इस दिशा में आगे बढ़ूंगा। परमात्मा मुझे सदैव ही प्रेरणा प्रदान करे।

नाम : जयप्रकाश सिंह, आयु : ५० वर्ष, योग्यता : इण्टर, कार्य : फाइनेंस, पता : कासमपुर, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड़।

द्विदिवसीय लघुगुरुकुल (सत्र)- अपने धर्म, अपने पूर्वजों के सत्य सिद्धान्तों एवं अपने कर्तव्य को जानने की जिज्ञासा लेकर आया था जो कि काफी हद तक जानने को मिला और इस सत्य को जानकर बहुत अच्छा लगा कि हमारे पूर्वज इतने महान रहें है।

परम पूज्य आचार्य जी श्री अश्विनी एवं अन्य वरिष्ठ राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के सभी पदाधिकारियों के विचारों से काफी प्रभावित हुआ हूँ। मैं आजीवन आर्य बनकर अपने राष्ट्र की सेवा में अपना सहयोग दूंगा।

नाम : प्रहलाद सिंह आर्य, आयु : ४३ वर्ष, योग्यता : एम.एस.सी, बी.एड., कार्य : अध्यापक, पता : आबूरोड़, सिरोही, राजस्थान।

प्रणाम गुरुवर मुझे इस सत्र में आकर ये ज्ञान मिला है कि हमारा राष्ट्र एक बड़ी चुनौती के सामने खड़ा है जिसके फलस्वरूप यदि हम सब एकत्र नहीं हुए तो पूर्व की भांति हमे फिर से अपने ही देश में गुलाम बनकर रहना पड़ सकता है। अतः हमे अपने राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए और पुनः आर्य समाज को व्यवस्थापित करना चाहिए।

नाम : सुमित जोशी, आयु : २६ वर्ष, योग्यता : १२वीं, कार्य : मजदूरी, पता : स्योहारा, बिजनौर, उत्तर प्रदेश।

सत्र को यदि मैं कहूं तो मेरा अनुभव अत्यन्त सुलभ, अलग व रूचिकर रहा। मैं 16 वर्ष तक जिस परम्परागत शैवमत को मानता रहा तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रवेश पश्चात् मेरी धार्मिक दृष्टि अत्यन्त उदासीन हो गयी। उक्त प्रेरक की प्रेरणा पर मैने यह सत्र को ज्वाईन किया। जो मेरे मत को लेकर जो समस्याएं अनसुलझे पहलू थे लगभग साफ हुए।

नाम : विवेक कुमार आयु : २१ वर्ष, योग्यता : बी.ए., कार्य : विद्यार्थी, पता : गंगदासपुर, मीरापुर, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

ईश्वर, धर्म, राष्ट्र के सत्य स्वरूप का यर्थाथ ज्ञान प्राप्त हुआ है। आर्य निर्मात्री सभा का एक व्यवस्थित और स्तुत्य प्रकल्प ये सत्र है। राष्ट्र को संगठित करना, व्यक्ति को विचार की स्वतन्त्रता देना और वेदाज्ञा का प्रचार सत्र का उद्देश्य मुझे प्रतीत हुआ। वेद-विज्ञान को जानने की इच्छा पहले से है। लगभग 40 दिन से इस पर लगातार चिंतन किया है। सत्र से ये इच्छा और बलवती हो चुकी है। वेद विद्या को जानने और राष्ट्रहित में कार्य करने की प्रबल इच्छा है। अकल्पनीय आनन्द सत्र में आया।

नाम : जयन्त आर्य, आयु : १७ वर्ष, योग्यता : १२वीं, कार्य : विद्यार्थी, पता : टन्ढेड़ा, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

पिछले जीवन में अपने धर्म के प्रति जो अज्ञानता की वास्तव में आज इस सत्र के द्वारा जो प्रकाशमय ज्ञान की प्राप्ति हुई, उससे भ्रम, भिन्नाताएं आदि दूर हुई और आर्य होने का ज्ञान प्राप्त हुआ मैं आज बहुत अभिभूत हूँ कि इस सत्र ने मुझे मेरी पहचान कराने में योगदान दिया

नाम : राजेन्द्र, आयु : ४९ वर्ष, योग्यता : स्नातक, कार्य : रि. सूबेदार, पता : शाहपुर, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।